लेखक परिचय

डॉ. हरिओम

जीन्द (हरियाणा) के ग्रामीण आंचल में 10 जनवरी 1959 को जन्में तथा कृषक परिवार की पृष्ठभूमि में आरम्भिक शिक्षा के बाद पी. एच.डी. (सस्य विज्ञान) की डिग्री चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से प्राप्त की। डिग्री हेतू किए गए संकर धान पर उत्तम शोध कार्य के लिए डॉ. वी.डी. कश्यप स्वर्ण पदक से सम्मानित।

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के सस्य विज्ञान विभाग में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत्त हैं। पिछले 24 वर्षों से मुख्य रूप से धान-गेहूं फसल चक्र, फसल प्रणाली व कृषि प्रणाली के उत्पादन सम्बन्धी शोध कार्य में संलग्न हैं। साथ ही देश एवं विदेश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में 150 से अधिक शोध पत्रों/लेखों और 6 पुस्तकों/बुलेटिन के लेखन में योगदान किया है। अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार 'नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट' में श्रेष्ठ शोध पत्र प्रस्तुति हेतू सम्मानित।

आध्यात्मिक पुनर्जन्म के लिए 14 नवम्बर 1986 को राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज के चरण कमलों में पहुंचे और दीक्षा ग्रहण की। सतगुरू की आज्ञा से 1 फरवरी 1998 से आध्यात्मिक कार्य के मिशन में संलग्न हैं। अध्यात्म को वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किया और 18 आध्यात्मिक पुस्तकों की रचना की।

प्रेम और भक्ति का शिखर

**राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र
(हरियाणा)**

सर्वाधिकार सुरक्षित
जून 2007

प्रेम और भक्ति का शिखर

डा० हरिओम
वरिष्ठ वैज्ञानिक

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र
(हरियाणा)

विषय - वस्तु

क्रम सं.	विषय	पष्ठ सं.
1.	आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य	1
2.	प्रेम और भक्ति का शिखर	5
3.	जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न	35
4.	पुस्तक सूची	36

राधास्वामी।

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय।

राधास्वामी।

समर्पित

राधास्वामी दयाल परम् संत
सतगुरू ताराचन्द जी महाराज
के चरण कमलों में।

आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज की प्रेरणा से हमने संकल्प लिया है कि आध्यात्मिक कार्यों के लिए किसी से भी पैसों की सेवा नहीं ली जाएगी और किसी आश्रम की स्थापना नहीं की जाएगी क्योंकि मेरा विश्वास है कि यदि कोई आध्यात्मिक सूर्य उदय होना चाहता है तो वह इतना सक्षम है कि वह अपना रास्ता स्वयं ही बनाएगा, यह उसकी आवश्यकता है और मजबूरी भी। यदि वह स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए किसी धन और आश्रमों का मोहताज है तो मुझे ऐसा अध्यात्म स्वीकार नहीं है।

व्यक्ति का धन दीनहीन की सेवा के लिए हो, गुरु की विलासिता के लिए नहीं। आज के अध्यात्म का मार्ग यदि झोंपड़ी की तरफ नहीं जाता है तो वह गुरूओं के आलीशान महलों की तरफ तो कतई नहीं जा सकता है। सर्वभूतों, दीन-दुःखियों और अपने चारों तरफ के वातावरण में ही सतगुरू के दर्शन हों। मनुष्य का हृदय ही आश्रम हो जो हर जीव-अजीव को शांति दे और उसके लिए सुख और परोपकार की कामना करे। व्यक्ति का घर ही आश्रम हो जहां पर माता-पिता और आगन्तुक परमात्मा तुल्य हों। शान्ति, विकास और सुरक्षा का आधार कम्यून, संघ या कोई गठजोड़ नहीं बल्कि स्वयं व्यक्ति हो जो समाज व वातावरण की जरूरत को समझे। व्यक्ति के विकास से समाज और देश के विकास का मार्ग स्वयं ही निर्मित होगा। यही आध्यात्मिक साम्यवाद है जो व्यक्ति एवं घर से आरम्भ होता है और विश्वमानव या महामानव के निर्माण पर इसकी पूर्ति होती है।

अध्यात्म का कार्य करने के लिए और उसमें जीने के लिए हमें किसी मन्दिर, मस्जिद, चर्च या गुरूद्वारे की आवश्यकता नहीं है। इस कार्य के लिए केवल एक ही इन्फरा-स्ट्रक्चर या व्यवस्था चाहिए और वह है मनुष्य रूपी शिवालय, मनुष्य रूपी देवालय। मिट्टी के एक तत्व से बने तीर्थ स्थान, मूर्ति या शास्त्र इसकी आवश्यकता नहीं हैं बल्कि परमात्मा के जीवन से भरपूर पंचतत्व से निर्मित मनुष्य का शरीर चाहिए जिसके अन्दर

स्वयं सष्टि का स्वामी निवास करता है। मनुष्य के मन और हृदय में सारे देवी-देवता, सारे तीर्थ व शास्त्र समाए रहते हैं और यहीं से इन सभी की पैदायश है।

बुल्लेशाह कहते हैं-

मन्दिर ढ़ाहदे मस्जिद ढ़ाहदे, ढ़ाहदे जो कुछ ढ़हंदा ए।
पर दिल किसी दा न ढ़ाहवी रब दिलां विच रहंदा ए।।

मेरा ऐसा मानना है कि यदि मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक सूर्य अर्थात् विज्ञानमय या आनन्दमय पुरूष की एक किरण भी संचित हो जाती है तो वहां पर हर तरह की बरकत स्वतः ही बहने लगती है। वह धरती सबको अपनी तरफ खींचने लगती है। सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक व आर्थिक चेतना का विकास होने लगता है। किसी समाज में यदि एक भी व्यक्ति ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह समाज ही नहीं बल्कि देश भी उन्नति के शिखर पर पहुंचता है। ऐसे समाज या देश को हानि पहुंचाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। उत्थल-पुत्थल अवश्य आती हैं लेकिन हर उत्थल-पुत्थल जीवन की नई-२ सम्भावनाओं व चुनौतियों को जन्म देती है। कर्मयोगी समाज के लिए यही सम्भावनाएं और चुनौतियां वरदान बनती हैं और सुनहरे भविष्य का निर्माण करती हैं।

मनुष्य के लिए शारीरिक या मानसिक धर्म अलग-२ हो सकते हैं लेकिन आत्मा या रूह का केवल एक ही धर्म हो सकता है और वह है प्रेम। सच्चा प्रेम मनुष्य को जोड़ता है तोड़ता नहीं। प्रेम अनहद है जो हर हद को पार करने का सामर्थ्य रखता है। प्रेम की कोई जात नहीं है, प्रेम किसी धर्म या सम्प्रदाय का मोहताज नहीं है। वह यह नहीं पूछता कि सामने वाला व्यक्ति हिन्दू है या मुसलमान, सिख है या ईसाई, ब्राह्मण है या शुद्र। वह तो केवल देना जानता है, लेना उसकी फितरत ही नहीं है। अतः इस भौतिक संसार में प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही मार्ग और प्रेम ही मंजिल है। इस मार्ग में किसी अवतार, पैगम्बर या मसीहा की बाहरी पूजा के लिए कोई स्थान नहीं है लेकिन इनके आदर्शों का अनुसरण करके हमें इन्हें अपने ही अन्दर जीवित करना होगा। इनकी दैविक चेतना का अनुभव हमें अपनी ही आत्मा के अन्दर करना होगा तभी विश्व गांव का सपना साकार

हो सकेगा और धरती पर स्वर्ग बनाने की इच्छा की प्राप्ति हो सकेगी। वरना धर्म और समाज की ये दीवारें मनुष्य को हमेशा आपस में बांटती ही रहेंगी।

प्रेम सार्वभौमिक धर्म है, जिसे मनुष्य के साथ-२ पशु और पौधा भी मानता है। जीव-अजीव की यह सारी सष्टि इसी प्रेम के खिंचाव की शक्ति के कारण ही भिन्न-२ अस्तित्वों में बंटी हुई है और हर एक अस्तित्व अपनी पूर्ति के लिए दूसरे अस्तित्व के चारों ओर चक्कर काट रहा है। पौधा, पशु, पक्षी, जीव-अजीव हमारे किसी धर्म या शास्त्र को नहीं जानते, वे तो बस प्रेम की भाषा को पहचानते हैं। अतः प्रेम का धर्म (धर्मे-सीना) ही व्यावहारिक धर्म है जो मनुष्य को शाश्वत धर्म या धर्मे-हकीकत से वाकिफ करवाता है। इसलिए मानव कल्याण के इस यज्ञ में हमें किसी धन या द्रव्य की आवश्यकता नहीं है बल्कि प्रेम व पवित्र विचार की आहुति चाहिए और उसी के प्रति संकल्प की आवश्यकता है।

माता-पिता और परिवार से मिली आध्यात्मिक पष्ठभूमि ने हमेशा मेरा मार्गदर्शन किया है और जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। आध्यात्मिक मिशन का यह कार्य मेरी पत्नी और आध्यात्मिक सहयोगी श्रीमती बिमल की प्रेरणा से आरम्भ हुआ। मेरे सतगुरू राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज ने इस प्रेरणादायक चिंगारी को अपनी तवज्जह और दया के हाथ से ध्यान-भजन की हवा देकर ब्रह्म अग्नि में परिवर्तित किया जो हर समय योगयज्ञ की ज्योति (नूर) बनकर अन्दर जलती रहती है और अनहद नाद बनकर खुदाई कलमा (वर्ड) सुनाती रहती है। सम्भवतः इसी आध्यात्मिक चिंगारी को आंखों में देखकर मेरे सतगुरू शहनशाह ने मेरा नामकरण किया और मुझे 'प्रकाश' के नाम से पुकारने लगे। तब से वे हम दोनों को बिमलप्रकाश कहकर पुकारते थे। आज सत्संग का यह कार्य सतगुरू-मुर्शिद की दया और मेहर से ही आगे बढ़ रहा है और इसमें बिमल का विशेष योगदान है। आध्यात्मिक दष्टि से देखा जाए तो बिमल का ध्यान हमेशा ही सारी संगत में अव्वल रहा जिसकी चर्चा मेरे सतगुरू समय-समय पर संगत के बीच में करते रहते

थे।

यह मैं उन लोगों के लिए लिख रहा हूं जो स्त्री को तुच्छ व भोग की वस्तु समझते हैं और कहते हैं कि औरत आध्यात्मिक ऊँचाई को नहीं छू सकती है। मेरे सतगुरू कहते थे कि परमात्मा ने दो ही जातियां बनाई हैं, एक स्त्री व दूसरी पुरूष। यही दो जातियां पुरूष और प्रकति बनकर सष्टि का सजन करती हैं। जब स्त्री और पुरूष स्वयं का आधा अस्तित्व एक-दूसरे को समर्पित कर देते हैं तो ये अर्धनारीश्वर बनकर एक दूसरे का अंग-प्रत्यंग होकर कार्य करते हैं और एकता के सूत्र में बंध जाते हैं। प्रकति जब अपना पूर्ण समर्पण कर देती है तो यह परामाया या पराप्रकति या राधा बनकर पुरूष (स्वामी) के अन्दर समा जाती है और पुरूष पराप्रकति या पराशक्ति बनकर अपने परम् शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है जहां पर लिंग-भेद, जाति-पाति और धर्म-सम्प्रदाय सभी गुण व आकार अस्तित्वहीन हो जाते हैं। ऐसे ब्रह्मरूप या सतगुरू रूप का अनुभव जो भी व्यक्ति करता है वही ब्राह्मण कहलाता है। कुण्डलीनी शक्ति के सुदर्शन चक्र और आध्यात्मिक सूर्य व चन्द्रमा के दर्शन स्वयं के अन्दर करता है वही सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी कहलाता है। ऐसे आत्मिक स्रोत के आगे सारी भौतिक सत्ता की ऐश्वर्यता नतमस्तक हो जाती है और ऐसे स्रोत का मार्ग यदि किसी सांसारिक विलासिता का मोहताज है तो यह एक विडम्बना है। मैं यह नहीं कहता कि मुझे यह सब प्राप्त हो गया है बल्कि इस आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति मैं प्रयासरत हूं ताकि पूरी मानवता इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहभागी बन सके। अतः इस प्रयास रूपी यज्ञ में मैं आप सब को प्रेम और पवित्र विचार की आहुति देने के लिए आमन्त्रित करता हूं। मुझे विश्वास है कि एक दिन यह आध्यात्मिक लक्ष्य अवश्य ही फलित होगा और पथ्वी पर रहने वाले मानस का अतिमानसीकरण होगा।

प्रस्तुत संकलन इसी आध्यात्मिक मिशन की जागति व पूर्ति के लिए किया गया है। हमें आशा है कि यह संकलन एक क्रियात्मक, रचनात्मक और दिव्यात्मक अध्यात्म को पाठकों के हृदय में प्रज्जवलित करेगा और आत्मिक धर्म तथा सच्चे अध्यात्म की खोज करने में सहायता करेगा।

राधास्वामी।

प्रेम और भक्ति का शिखर

राधास्वामी योग स्वामी जी महाराज और हुजूर सालिगराम जी महाराज ने कलयुग के जीवों पर दया करके जारी किया है। यह योग कबीर और नानक साहब के द्वारा बताई गई गुरू भक्ति और अनहद मार्ग अर्थात् सुरत-शब्द योग को आधार बनाकर आगे बढ़ता है। उपनिषद्, गीता और वेदों में वर्णन किए गए नाद व अक्षर-ब्रह्म का पूर्ण भेद खोलता है। यह आर्य समाज के पूरे रास्ते को अपनाकर आगे बढ़ता है। आर्य हुए बगैर इस मार्ग पर एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। आर्य समाज सारे पाखण्डों और कर्मकाण्डों से दूर रहने की शिक्षा देता है। बस एक ईश्वर को ही सत्य मानता है। यही राधास्वामी योग भी कहता है। मेरे सतगुरू ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि यह योग निखालस कलाकन्द और मिसरी है। हाथी का पैर है जिसमें सारे पैर अपने आप ही समा जाते हैं। इसमें भक्ति से रास्ता शुरू होता है। भक्ति से शुरू होकर, कर्मयोग और ज्ञान योग इसके अन्दर ही समाते चले जाते हैं। इसमें प्राणायाम योग, कुण्डलीनी योग, लय योग, नाद योग, तांत्रिक योग आदि सभी मार्गों का फल मिल जाता है। सुरत-शब्द योग इन सभी को रास्ते में छोड़कर आगे बढ़ जाता है।

यह प्रेम और भक्ति का मार्ग है जहां गुरु और शिष्य का मेल रंग लाता है। मुर्शिद और मुरीद का पूर्ण और कामिल मिलन होता है। आत्मा परमात्मा में समा जाती है। गुरू-शिष्य या आत्मा-परमात्मा

का पूर्ण मिलन अभेद रूप से तभी हो सकता है जब दोनों एक दूसरे में साधर्म होकर समा जाते हैं। बीच में कोई भी दीवार बाकी नहीं रहती है। मुरीद मुर्शिद के अन्दर फनाह हो जाता है, कुर्बान हो जाता है, उसके प्यार में खो जाता है। इसके बाद अपने अन्दर दिखाई देने वाली कोई भी कमी भक्त से सहन नहीं होती है और उसका दिल, प्राण व विचार पवित्र होते चले जाते हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए परमात्मा के प्रकाश (नूर) में जाना एक खेल होता है, उसे किसी भी तरह का संघर्ष करने की आवश्यकता नहीं रहती है। उठते-बैठते, खाते-पीते ऐसा साधक अनहद-नाद का पान करता है और गुरू की ज्योति में ठहर जाता है। इसलिए यह मार्ग एक ही चीज मांगता है और वह है प्रेम। वह है प्रीतम की भक्ति। बाकी सारी जरूरतें अपने आप ही पूरी होती चली जाती हैं बिना किसी विशेष प्रयत्न के, बिना किसी विशेष संघर्ष के। ऐसे व्यक्ति के लिए बीड़ी-सिगरेट छोड़ना, शराब या किसी भी तरह का नशा छोड़ना या कोई भी बुरी आदत छोड़ना चुटकी का खेल है। यदि ऐसा प्रेम नहीं है तो फिर सुरत-शब्द योग को गहराई से अनुभव करना असम्भव है, नामुमकिन है। इसके बिना हम सुरत-शब्द योग की केवल बाहरी झलक पा सकते हैं लेकिन इसके आन्तरिक और गहरे रूप की थाह नहीं पा सकते हैं।

जब दिल के अन्दर प्रेम उठता है तो मन और शरीर की ऊर्जा बंधती चली जाती है। बुद्धि और विचार जो बिखराव का दूसरा नाम है, पीछे हटते चले जाते हैं, परमात्मा के आने का रास्ता खुलता चला जाता है। द्वैत और संशय के लिए कोई स्थान नहीं बचता है। इंद्रियों और मन

के अन्दर की सारी वति एकाग्र होती चली जाती है। चेतना की यही एकाग्रता जब दोनों आंखों के ऊपर बढ़ती चली जाती है तो यह ताकत इकट्ठी होकर प्रकाश का झरना बनकर फूट पड़ती है। प्रकाश की धारा बनकर बहने लगती है। शुरू में हम सतगुरू के ख्याली रूप को लेकर चलते हैं, ख्याली रूप से ही प्यार करते हैं। यही ख्याली रूप जब घना हो जाता है तो नूर के रूप में प्रकट हो जाता है। यह ख्याली रूप चेतना की एकाग्रता को बढ़ाने में मदद करता है। चेतना की एकाग्रता का नाम ही परमात्मा है और चेतना के बिखराव का नाम ही संसार है। इस्लाम धर्म में अल्लाह को नूर कहा गया है। हिन्दू धर्मो में परमात्मा को ज्योतिस्वरूप ब्रह्म या परमज्योति कहा है।

मेरे सतगुरू राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज खुदा थे। ऐसे शब्द-भेदी रहबर का इस नाशवान संसार में आना और ठहरना एक आश्चर्य भरी बात है। जो कभी-कभार ही घटित होती है। प्रकाश में अनेकों लोग चले जाते हैं और बैठकर गुरू बनकर उपदेश भी करने लग जाते हैं लेकिन गरीबी के अन्दर से इस तरह निकल कर आना, दुनियां से टक्कर लेना और आत्म सम्मान और सच्चाई के साथ जीने का प्रयत्न करना, दुनियां के पाखण्डों का भी विरोध करना, बहुत ही कठिन कार्य है। जब कोई गरीब आदमी स्वयं के बनाए हुए रास्ते पर चलता है और आगे बढ़ने लगता है तो उसके अनेक दुश्मन पैदा हो जाते हैं। हाथ जोड़ते-२ भी लोग टकराने लगते हैं लेकिन जब कोई राजा का पुत्र धर्म के रास्ते पर चलता है तो लोग आंख मूंदकर उसके पीछे-पीछे चलने लगते हैं और

उसे अवतार की उपाधि से सुशोभित करते हैं। मेरे सतगुरू की यदि कहानी लिखी जाए या फिल्म बनाई जाए तो उसकी रोचकता और सार्थकता अलग ही होगी। संसार में उन्हीं महात्माओं की कहानी चलती है जो जीवन की असली समस्याओं से जूझते हैं और लोगों को विषम परिस्थितियों में भी सच्चाई के रास्ते पर चलने की प्रेरणा देते हैं। फिल्म मेरे जीवन की नहीं बन सकती है। फिल्म बन सकती है कबीर साहब की। मैं कहता हूं स्वामी जी महाराज की भी फिल्म नहीं बन सकती है क्योंकि उन्होंने तो सारा ही जीवन एक कमरे में बैठकर परमात्मा की भक्ति की और उसकी ताकत को संसार में उतारा जो अब राधास्वामी पंथ की नींव बनकर कार्य कर रही है। इसीलिए आज के दिन करणी और रहनी से भरपूर यदि कोई पंथ है तो वह यही है। यह एक सिस्टम होता है जिसमें कुछ व्यक्तियों की ड्यूटी तो ध्यान लगाने की होती है और कुछ दूसरों की ड्यूटी ध्यान की उस दौलत को संसार के दु:खी और असहाय लोगों के लिए उपलब्ध कराने की होती है। जब ध्यान की दौलत को बांटने की बारी आती है तब दयाल की ताकत का काल के थपेड़ों के साथ आमना-सामना होता है लेकिन जब ध्यान की नींव मजबूत करनी होती है तो सारा कार्य शांति से बनता चला जाता है और रूकावट डालने वाले लोगों को कुदरत धीरे-धीरे रास्ते से हटा देती है और अच्छे आदमियों की जमात उसमें शामिल होती चली जाती है।

स्वामी जी महाराज ने सारी जिन्दगी ध्यान किया। ध्यान बोलने की चीज ही नहीं है। वह तो फिल्म बनाने की चीज ही नहीं है। यही

कारण था कि स्वामी जी महाराज अपने अंत समय में संगत के सामने बैठते हैं, कहते हैं कि अब हमारे चलने का समय आ गया है। संगत रोने लगती है, प्रार्थना करने लगती है लेकिन वे सत्संगियों के लिए कुछ खास-खास निर्देश देते हैं, ध्यान भजन के बारे में थोड़ा बतलाते हैं, आगे कार्य करने के लिए कुछ विशेष लोगों की ड्यूटी लगाते हैं और वहीं पर बैठकर श्वास ऊपर की तरफ खींचने लगते हैं, आंखों की पुतलियां उल्ट जाती हैं और देखते-देखते इस संसार से विदा हो जाते हैं। आज हमें गर्व है कि हम ऐसे संतों की संतान हैं और वही ध्यान, करणी व रहणी किसी न किसी स्थान पर इस पंथ में विद्यमान रहते हैं तथा वही ताकत लोगों का मार्ग दर्शन करती रहती है।

मेरे शहनशाह सतगुरू ऐसा जीवन लेकर आए थे कि उनकी एक वहद फिल्म बन सकती है। वे ऐसे गरीब आदमी को जो दुः,खों से, गरीबी से भरा पड़ा है और कहता है कि मेरा तो कोई भी नहीं है, समझाते हुए कहते हैं कि अगर तुम परमात्मा की तरफ एक कदम बढ़ाओगे तो वह तुम्हारी तरफ आठ कदम उठाएगा। परमात्मा अपने भक्त को कहता है :

तू सरकै ढ़िग एक तो मैं सरकूं आठ।
जो तू करड़ा होए तो मैं हूं करड़ा काठ।।

हम गरीबी में दुःखी हो जाते हैं लेकिन क्या वह परमपिता अपने प्यारे को दुःखी देख सकता है। ईश्वर सबसे पहले अपने भक्त को अपना ऐश्वर्य देता है। सबसे पहले पैसा आएगा, घर में जगह ढूंढेगा, कहीं बच्चों के अन्दर से, कहीं रिश्वत के रूप में, कहीं

भ्रष्टाचार के रूप में और कहीं दहेज के रूप में आने लग जाएगा और हम उस दहेज को लेकर, रिश्वत लेकर उस सारी आध्यात्मिक कमाई को बरबाद कर देते हैं। जिस राम नाम की कमाई की वजह से वह बरकत आने लगी थी, जिस चीज की वजह से इज्जत बनने लगी थी, उसे भूलकर हम गिरावट में आ जाते हैं। आज संत मत व गुरूओं के सभी डेरे पैसे का खेल खेल रहे हैं। इसका भी यही कारण है लेकिन हम ऐसा करके अपनी आगे की बढ़ोतरी में गुलमेख मार देते हैं, खत्म कर देते हैं। यही नहीं बल्कि सारी सियासत भी धीरे-२ उसी इलाके की तरफ आकर सिमटने लग जाती है जहां पर आध्यात्मिक कमाई का कोई धनी तपता है या सच्चे अध्यात्म का बीज बोकर चला जाता है लेकिन हम थोड़े समय में ही हमारे पूर्वजों की उस कमाई का नाश करने लग जाते हैं। सुख-सहुलियतों और धन-दौलत आने के बाद भी उस करणी को बनाए रखकर देखो। उस समय में कोई बिरला ही, अरब-खरबों में एक ही रूक सकता है, सच्चाई के मार्ग पर डट सकता है और अगर कोई दो पीढ़ी भी डट गया तो उसका परिणाम अलग ही होगा। कबीर साहब तो कहते हैं कि चार जन्मों में मुक्ति होती है-

एक जन्म गुरू भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम।
तीजे में मुक्ति पद, चौथे में निज धाम।।

एक जन्म लेते हैं, फिर मरते हैं, फिर जन्म लेते हैं और फिर मरते हैं लेकिन कोई व्यक्ति प्रश्न कर सकता है कि कैसा पुनर्जन्म और कैसी मुक्ति? क्या पता यह सब होता भी है या नहीं लेकिन मैं

कहता हूं कि राम-नाम के मार्ग पर चलने का नतीजा देखने के लिए चार जन्मों तक जाने की जरूरत नहीं है। यदि कोई सच्चाई पर डट सकता है तो अपनी नजरों के सामने ही तीन-चार पीढ़ियों को देख लो। दूसरी पीढ़ी में ही हर तरह की बरकत आने लगती है। राम नाम के अन्दर जो ताकत है उसे समझने की जरूरत है। जिस समय वह ताकत प्रकट होने लग जाएगी, तो मेरे बादशाह कहते थे कि व्यक्ति के पास एक तो पैसे की कमी नहीं रहेगी, दूसरा उसकी इज्जत बनने लग जाएगी और तीसरा उसको बिमारियों में फायदा होगा, उसकी बिमारियां कम हो जाएंगी। जिसने अपने अन्दर में नाम को प्रकट कर लिया है, वह चुम्बक बन जाता है और संसार की सारी बरकतें स्वयं ही उसकी तरफ खिंचकर आने लगती हैं।

लेकिन जब बरकत आने लगती है, सच्चाई और मेहनत पर चलने का परिणाम मिलने लगता है तो दूसरी पीढ़ी में आकर ही हम गिर जाते हैं। रिश्वत, भ्रष्टाचार, दहेज रूपी बिमारियों में फंस जाते हैं। जो चीज आगे बढ़ना चाहती है उसको लगाम दे देते हैं। आगे आने वाली सन्तान का मार्ग अवरूद्ध कर देते हैं। यह आप खुद ही आंख खोल कर देख सकते हैं कि जिसने भी गरीबों की मदद की है, उस परमात्मा के लिए थोड़ा-बहुत त्याग किया है, उसी परिवार में आज बरकत मौजूद है। आर्य समाज ने इसमें बहुत बड़ा कार्य किया है। लेकिन आज हम उसी आर्य समाज को भूलते चले जा रहे हैं, इसे केवल चंदा इकट्ठा करने का साधन बना लिया गया है। ब्रह्म-ध्यान को छोड़ दिया गया है। केवल हवन-यज्ञ तक ही सिमट कर रह गए हैं।

आप किसी का भी इतिहास ले लेना, कहीं देख लेना, लेकिन बरकत शुरू होते ही हम तबाही मचाना शुरू कर देते हैं। अब ये सत्संगी मेरे पास आते हैं, जोर लगाते हैं कि सेवा (पैसा) ले लो, नहीं तो सत्संग का काम कैसे चलेगा? लेकिन मैं इस बात को नहीं मानता हूं क्योंकि दाता सतगुरू का ऐसा हुक्म नहीं है। और अगर पैसा लेने से ही मौज चलती है तो धिक्कार है उस मौज को। उस सत्संग में जाने की जरूरत नहीं है, उसे छोड़ दो। अगर मौज है तो अपने आप रास्ता निकाल लेगी और यदि नहीं है तो अपना समय और पैसा बरबाद करने की जरूरत भी नहीं है।

प्रेम और भक्ति की धारा में इतनी शक्ति है कि जब यह बहती है तो दरिया की तरह अपना रास्ता स्वयं ही बना लेती है। आध्यात्मिक सूर्य जब अंतर में प्रकट होता है तो उसे अपना रास्ता बनाने की जरूरत नहीं होती है। उसका प्रकाश लेने के लिए और जीवन को जीने के लिए दुनियां को उसका मोहताज होना ही पड़ता है। उसकी भी मजबूरी है कि उसे परहित के लिए चमकना ही पड़ता है और जीवन ऊर्जा देनी ही पड़ती है। इसी में दोनों की आत्मिक पूर्णता है। मेरे सतगुरू प्रेम के भण्डार थे। यह रचना प्रेम से ही चलती है। प्रेम में खींचने की शक्ति होती है। जब ध्यान में जाते हैं तो जो ताकत बिखराव में आई हुई है वही साधने पर एकता में आ जाती है। एकता में ताकत बंध जाती है, अनेकता में आकर वही बिखर जाती है। अनेकता में आने पर ही यह सष्टि विस्तार में आती चली जाती है। इसकी दौड़ और चंचलता बढ़ती चली जाती है। सूरज, चांद, सितारे,

आप और हम उस ताकत में से पैदा हो जाते हैं। लेकिन इस विस्तार का आधार एकता है। आप जानते हैं कि प्रेम हमेशा जोड़ता है, कभी तोड़ता नहीं है, इसलिए प्रेम एकता में ले जाने का, स्रोत में ले जाने का एकमात्र साधन है। इसलिए सुरत-शब्द योग का रास्ता प्रेम को पकड़कर ही आगे बढ़ता है। प्रेम और भक्ति ही इस मार्ग की जान है।

मेरे सतगुरू प्रेम के ऐसे भण्डार थे कि जब उनके पास कोई आदमी जाता था और अपना दुःखड़ा सुनाता था तो वे उसके साथ ही रोने लग जाते थे। कहते थे कि लोग कहते हैं कि संत को रोना नहीं चाहिए, यदि रोने से संतगिरी टूटती है तो मेरी तो वह टूटी ही रहती है। मेरे वश की बात नहीं है, मैं प्रेम को देखकर झुक जाता हूं। प्रेम से श्रद्धा बढ़ती है। जिसकी श्रद्धा टूट गई उस व्यक्ति का सतगुरू में अभाव आ जाता है। अभाव आने से ध्यान-भजन तो क्या सतगुरू शिष्य के रिश्ते में भी दरार पड़ जाती है। वह सतगुरू हम सब के अन्दर साक्षी बनकर बैठा हुआ है। कई व्यक्ति अपने मन में सतगुरू के प्रति चोरी रखते हैं या अभाव रखते हैं लेकिन जब सतगुरू के सामने जाते हैं तो कुछ और दिखाते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी भी नूरी सतगुरू का मुंह नहीं देख सकते हैं। प्रकाश में नहीं जा सकते हैं। अन्दर का मैल सबसे बड़ा आवरण है। उसके धोए बगैर मेली से मेल होना नामुमकिन है क्योंकि यह मेल कही बाहर से नहीं होना है। हम बाहर के सतगुरू को धोखा दे सकते हैं लेकिन अन्दर के सतगुरू को कभी नहीं दे सकते।

भक्ति करना अच्छी बात है लेकिन अगर भक्ति वासना के साथ की गई है तो उसका फल भी हमें अवश्य मिलेगा। यदि वासना के साथ भक्ति की है तो उसका फल भी वासना लेकर आएगा, कर्मों की बेल को आगे बढ़ाएगा। राजनीति आ जाएगी, पैसा आ जाएगा लेकिन मन की शांति नहीं मिल पाएगी। हम तो इसी में खुश हो जाते हैं कि दाता ने कहा था तेरे लड़का होगा और यदि लड़की हो गई तो सतगुरू से नाराज हो जाते हैं, कहते हैं कि वे तो परम पुरुष थे फिर लड़की कैसे हो गई? मैं एक वैज्ञानिक हूं लेकिन अनुभव के आधार पर कहता हूं कि यदि आपको पूर्ण विश्वास है तो आपको लड़का ही होगा। यह हमारा अभाव है, संशय है जो हमारे विश्वास में सुराख कर देता है। ईसा मसीह घूमते हुए जा रहे थे, कोई रास्ते में बिमार आ जाता है, कोई अपंग या दुःखी व्यक्ति आ जाता है और उनसे ठीक होने की फरियाद करता है तो वे सबसे पहले यही पूछते थे कि क्या तुम्हें मुझ पर पूर्ण विश्वास है? जब वह व्यक्ति हां कहता तो वे कहते थे कि अच्छा जाओ, तुम्हारी कामना अवश्य पूरी हो जाएगी। यह एक विज्ञान है जिसे समझने के लिए आपको एक पूर्ण समर्पित शिष्य बनने की प्रक्रिया में से गुजरना होगा, कोरी बुद्धि से विश्वास के विज्ञान को समझना बहुत ही कठिन है। किसी भी बात को पूरे हृदय से स्वीकार करते ही हमारे अन्दर एक रसायनिक बदलाव आने लगता है। यह बदलाव मनुष्य के अन्दर एक असीम शक्ति का संचार कर देता है और असम्भव कार्य सम्भव हो जाता है।

जब सतगुरू के साथ रिश्ता बांधते हो तो इन स्थूल बातों पर मत अटको। लड़का होना है या लड़की, उनकी मौज पर छोड़ दो लेकिन फिर भी मैं कहता हूं कि अगर किसी ने स्थूल की मांग की है तो उसे स्थूल मिला है। मन की मांग की है तो उसे मन के विकार मिले हैं, मन का अभिमान मिला है। वासनाओं का मांग की है तो उसे वासनाएँ मिली हैं और यदि किसी ने आत्मा की पुकार की है तो उसे आत्मा मिली है, शांति मिली है। धन-दौलत सभी आत्मा की संतान हैं, आत्मा के भण्डार में ये सुख स्वयं ही भरे पड़े हैं फिर भी यदि कोई सतगुरू के पास जाकर इनकी मांग करता है तो वह नासमझ है। और मान लो कि लड़का हो गया तो क्या जरूरी है वह आपको सुख ही देगा। सुख मिलेगा तो सतगुरू की दया से मिलेगा और अपने कर्मों से मिलेगा। यदि हम अपने अंदर के खजाने को खोल लेंगे तो हमारे अंदर दूसरों की मदद करने की भावना स्वयं ही आने लगेगी और खुद जरूरत पड़ने पर अनेकों व्यक्ति मदद के लिए खुद ही हमारे पास आ जाएंगे।

मेरे सतगुरू के सत्संग में एक 16-17 साल की लड़की आती थी। वह कहने लगी कि महाराज जी! मुझे नाम दे दो। वे कन्या को नामदान नहीं देते थे। मैं भी कहता हूं कि छोटे बच्चों को या कन्या को शादी से पहले नामदान नहीं लेना चाहिए। लड़की को पता नहीं शादी के बाद कैसा पति और परिवार मिले। उसके बाद आपसी समझ से ही नामदान लेना चाहिए। नाम का अपना एक विज्ञान भी होता है। नाम के स्मरण व ध्यान से शरीर और मन में एक विशेष प्रकार का बदलाव आता है और यह बदलाव कच्ची उम्र में उचित नहीं है। नाम

की एकाग्रता बढ़ने के साथ-साथ मस्तिष्क का दायां हिस्सा गति में आने लगता है, क्रियाशील होने लगता है। समय से पहले ऐसा होना उचित नहीं है। पहले मस्तिष्क का बांई हिस्सा विकसित होना आवश्यक है क्योंकि यह हिस्सा मनुष्य की रीजनिंग को प्रभावित करता है, उसके जानने और समझने की क्षमता पर असर डालता है। इसके विपरित यदि मस्तिष्क का यह हिस्सा (बाई ओर का) जरूरत से ज्यादा क्रियाशील हो जाता है तो व्यक्ति के पागल या सनकी होने की संभावना बढ़ जाती है। ऐसा व्यक्ति किसी के ऊपर विश्वास नहीं कर पाता है, शंकालू हो जाता है। स्वयं के स्वार्थ को सर्वोपरि समझता है। उसे समझाना भी आसान नहीं है। लेकिन जिस व्यक्ति का दायां हिस्सा अधिक क्रियाशील है, वह बुद्धि की बजाय दिल से अधिक काम लेता है। दूसरे के दुःख को देखकर रोने लग जाता है। ऐसे व्यक्ति की आस्तिक होने की संभावना बढ़ जाती है। वह अति (अक्सट्रीम) में रहना अधिक पसंद करता है। ऐसे ही व्यक्ति विद्रोही या क्रांतिकारी हुआ करते हैं। कला, कवि, प्रेम में पागल होना ऐसे व्यक्तियों का गुण हो सकता है। भय में जीते हैं लेकिन यदि मजबूर किया जाये तो ये भय की सभी सीमाओं को पार भी कर सकते हैं। इनके मस्तिष्क से अल्फा, थीटा जैसी रेडिएसन अधिक मात्रा में निकलती है। ऐसे व्यक्ति को यदि अपने क्षेत्र का ठीक से ज्ञान हो जाए तो इनका विश्वास देखते ही बनता है। समाज के अधिकतर सफल व्यक्ति यही होते हैं। यदि ये स्वार्थी होते हैं तो बहुत ही सीमित हो जाते हैं और पारिवारिक मोह में ही फंसकर अपना जीवन बरबाद कर जाते हैं लेकिन जो

निस्वार्थ होते हैं उन्हें परोपकार व अध्यात्म का रास्ता खूब रास आता है। इनकी रीजनिंग पावर दूसरे लोगों की बजाय कम होती है लेकिन समाज के अंदर अधिक टिकाऊ होते हैं क्योंकि इनके ऊपर विश्वास किया जा सकता है। इन्हें कल्पना और सपनों के संसार में जीना अच्छा लगता है।

नाम के स्मरण और ध्यान से मस्तिष्क का दायां हिस्सा जागत होने लगता है। व्यक्ति भावुक होने लगता है, प्रेम में बहने लगता है लेकिन कच्ची उम्र में ऐसा होना दिमाग और शरीर की बढ़वार को रोकता है। यही कारण है कि मेरे सतगुरू पढ़ने वाले लड़के और कन्या को नाम नहीं देते थे लेकिन आजकल की भेड़चाल ऐसी हो गई है कि स्वयं गुरू भी इन बातों से अनजान हैं या जानते हुए भी सत्संग व नाम को भीड़ इकट्ठी करने का पेशा बना दिया गया है। इससे समाज की हानि हो सकती है लेकिन यदि यही कार्य उचित समय और उम्र में ईमानदारी से किया जाए तो व्यक्ति की मदद भी करता है। बुद्धि और दिल में एक संतुलन पैदा करता है, उसे शांति देने में मदद करता है। बुद्धि की चंचलता और दिल की धर्मान्धता को कम करता है। जब विचार को प्रेम का पहिया मिल जाता है तो विवेक और अन्तः प्रेरणा का जन्म होता है। स्वयं की बजाय दूसरे की महता अधिक होने लगती है। ज्ञान और प्रेम का यह संगम श्रद्धा और व्यक्तित्व को मजबूत करता है। ऐसी ज्ञान पूर्ण भक्ति ही अध्यात्म का लक्ष्य है। अतः यदि समझ के बिना अध्यात्म का रास्ता अपनाया गया तो यह अनुचित हो सकता है। लेकिन आज के समय में जब व्यक्ति पल में लाखों व करोड़ों की दौलत कमाना चाहता है, ऐसे समय में

यदि आध्यात्मिक मार्गदर्शन नहीं रहेगा तो समाज में अफरातफरी मच जाएगी, विनाश का रास्ता खुल जाएगा। अध्यात्म समाज को स्थिरता देता है। और भागते हुए व्यक्ति को चैन देता हे, उसे सोचने पर मजबूर अवश्य करता है। आध्यात्मिक व्यक्ति के जीने का नजरिया बदल जाता है।

मेरे सतगुरू के सत्संग में 16-17 साल की जो लड़की आती थी उसके कहने के बाद भी महाराज जी ने उसे नामदान नहीं दिया। उसका विश्वास सतगुरू में ज्यादा था। उसने सत्संग में ही यह समझ लिया कि राधास्वामी नाम है और उसने स्मरण करना शुरू कर दिया। श्रद्धा और विश्वास पहले से ही थे। जब स्मरण और भाव (श्रद्धा) हो जाते हैं तो फिर तीसरी चीज की जरूरत भी नहीं रह जाती है। न पढ़ाई की, न ज्ञान की और न ही किसी भी यम-नियम या कर्मकाण्ड की। बल्कि ये सभी चीजें बीच में रूकावट पैदा करती हैं। भाव बनते ही हमारी वति बंधने लगती है। स्मरण से वह ऊपर चढ़ जाती है, ध्यान से तीसरे नेत्र के स्थान पर डट जाती है और भजन से धुन के साथ ऊपर चढ़ने लगती है इसे ही कुण्डलीनी जागरण कहते हैं। वह लड़की जल्दी ही ज्योति में चली गई जिसे हमारे शास्त्र ज्योति-स्वरूप ब्रह्म कहते हैं। मेरे सतगुरू का संग ही ऐसा था कि जो भी व्यक्ति उनके निकट प्रेम और भाव लेकर जाता था वह भरपूर होकर लौटता था। इसी संग को सत्संग अर्थात् सत्य का संग कहा जाता है। वे स्वयं कहते थे कि सत्संग में यदि संशय लेकर आओगे तो खाली हाथ लौट जाओगे। जैसी मांग होगी वैसी ही पूर्ति हो जाएगी।

यदि झील के पास बैठे हैं तो ठण्ड मिलती है, बरसीम के खेत के पास से निकलते हैं तो ठण्डी हवा लगती है। यदि खेत के अंदर घास-फूंस या गेहूं की कटाई के बाद उसका नलवा जलाया गया है तो काफी दिनों तक जब भी हम उस खेत के निकट से गुजरते हैं तो गर्म हवा लगती है। यह सब संग का परिणाम है। सत्संग में भी ऐसा ही होता है, जन्म-जन्मों के कर्म कटते हैं। चाहे कुछ समय के लिए ही विचार शुद्ध होता है या शांति मिलती है, वह भी अपना संस्कार रूपी बीज छोड़ कर जाता है। महाराज जी तो स्वयं परमात्मा की ताकत के जीवित झरना थे जिसमें से हर वक्त रूहानियत की खुशबू निकलती रहती थी। उनके पास जो भी जाता था उसे फायदा अवश्य पहुंचता था। वे करणी और रहणी के अपार धनी थे। और क्या बताऊं आप विश्वास नहीं करेंगे। वे किसी के घर जाते थे, उनकी एक छोटी सी पांच साल की बच्ची थी। वे उसके साथ खेलने लग जाते थे। वह एक दिन कहने लगी कि मेरे अंदर रंग भरे हैं। जब में सोने लगती हूं तो मुझे लाल पीली आंधी दिखती है। घूमती हुई आती है और चली जाती है। इस लाल-पीली आंधी ने दुनियां के कितने ही मत-मतान्तर अपनी लपेट में ले लिये। जितने भी धर्म और सम्प्रदाय खड़े हैं वे इस लाल-पीली आंधी से आगे नहीं जा पा रहे हैं लेकिन सुरत-शब्द योग में यह छटे चक्र का खेल है। कोई इसे सम्प्रज्ञात समाधि कहता है और कोई इसे सविकल्प समाधि कहता है। कोई इसे दिव्य चक्षु कहता है, कोई दिव्य नेत्र, तीसरी आंख या रूद्र नेत्र का खुलना या ज्योति-स्वरूप

ब्रह्म कहता है। कोई इसे शिव बाबा, कोई अर्धनारीश्वर, कोई इसी को लय योग और कुण्डलीनी योग की अन्तिम सीमा मानता है। इसे सर्पिणि शक्ति या भुजंगिनी शक्ति भी कहा जाता है जो योग करने से जागती है और वत बनाकर घूमने लगती है। यह लाल-पीली आंधी है। जैसा रंग सूर्योदय के समय दिखाई देता है, इसी अरूण रंग की ज्योति का ध्यान जैन धर्म में दर्शन केन्द्र अर्थात् आज्ञा चक्र पर प्रेक्षा ध्यान में करवाया जाता है।

सुरत-शब्द योग यहां से आरम्भ होता है। यहां से अन्दर का शब्द शुरू होता है, घूं-घूं, पी-पी शुरू होती है। यहां पर दस प्रकार के शब्द आते हैं जो ऊपर की शब्दों की गूंज होते हैं, या छाया होते हैं। इन्हें सुनकर कुछ लोग कहने लग जाते हैं कि हमें तो बीन-बांसुरी सुनाई देती है। जब उनसे पूछा जाता है कि प्रकाश कैसा दिखता है तो कहते हैं कि प्रकाश तो नहीं है या कहते है कि पहले तो एक हजार वाट के बल्ब का प्रकाश था अब वह सौ वाट का रह गया है। धिक्कार है बांसुरी की ऐसी धुन को। जब भंवर गुफा की बांसुरी की धुन प्रकट होती है तो प्रकाश की बाढ़ सी आ जाती है। जब बीन का लहरा शुरू होता है तो शरीर से चेतना को उधेड़ देता है। शरीर में जमी हुई चेतना की जड़ हिला देता है। घमरोली काटती हुई चेतना ऊपर चढ़ने लगती है। क्या ऐसे ही होता है बीन का लहरा, जब यह आएगा तो प्रकाश का झरना फूट जाएगा क्योंकि धुन और प्रकाश का मेल होता है। धुन के अंदर उतार-चढ़ाव होता है। जैसे घंटे की धुन है, शंख की धुनी है, बीन, बांसुरी, सितार की धुन है इनमें चेतना की झूल चढ़ती

है, फिर उतरती है लेकिन जब यह उतार चढ़ाव खत्म हो जाता है तो धुन में भी स्थिरता आ जाती है यह शब्द का मण्डल आ जाता है। धुन के बाद शब्द के मण्डल में भी जाना पड़ता है। यह केन्द्र है लेकिन शब्द के मण्डल में प्रकाश नहीं है या प्रकाश के होने का केवल आभास है। यही लय मण्डल भी है। अण्ड से ब्रह्मण्ड की चोटी तक छः मण्डल हैं जिनमें से तीन मण्डल धुन के हैं और तीन मण्डल शब्द के हैं। शब्द के तीन मण्डल अंधकार के मण्डल हैं। इसी प्रकार छः मण्डल सच्चखण्ड के हैं। इनमें भी तीन मण्डल धुन के हैं और तीन मण्डल शब्द के हैं। धुन के मण्डल को ही सुरत (आत्मा) का मण्डल कहते हैं और शब्द का मण्डल स्वामी की ताकत का मण्डल है। इसीलिए इस योग को सुरत-शब्द योग कहा जाता है। आंखों से ऊपर ये बारह मण्डल हैं और आंखों के नीचे छः स्थूल मण्डल हैं। आंखों के पास तीसरे तिल के स्थान पर अण्ड है जो ऊपर के सारे मण्डलों का अण्डा है अर्थात् बीज रूप है जिसे हिरण्यगर्म भी कहा गया है, यही सष्टि का गर्भ है, जहां से नीचे की सभी इन्द्रियों का, पंच महाभूत, पंच तन्मात्रा, मन, हृदय, बुद्धि, विवेक आदि का जन्म होता है। सारा विराट संसार इसी हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति है।

स्पष्ट है कि आत्मा जब अभ्यास में जाकर इन मण्डलों की यात्रा करती है तो उसे इन सभी मण्डलों को पार करना पड़ता है, इन सभी दिवारों को जिन्हें कोष भी कहा गया है पार करना पड़ता है। चेतना की चादर के ऊपर जो जन्म-जन्मों के संस्कार रूपी मैल पड़े हुए हैं, उन्हें साफ करना पड़ता है। मैं हिन्दू हूं, मैं मुस्लमान, सिक्ख या ईसाई हूं, यह सभी इस चेतना के मैल हैं, इस पर अंकित बिन्दू

हैं, स्टीमुलाई हैं जो उचित माहौल मिलते ही क्रियाशील हो जाते हैं और सहज ही अपनी अलग दुनिया का निर्माण कर लेते हैं, अलग संसार खड़ा कर लेते हैं। स्वयं का अहंकार खड़ा कर लेते हैं जो चेतना की दिवारों को और अधिक मोटा कर देता है। यही बीच के प्लग हैं जो चेतना के बहाव को बीच में रोक देते हैं। स्वीच आफ कर देते हैं। आत्मा की चढ़ाई में रूकावट बन जाते हैं। अहंकार या मन कोई एक नहीं है, हमारी चेतना पर अनगिनत अहंकार के बिन्दू है, हमारा मन एक नहीं है बल्कि यह पोलिसाइकिक है, बहुआयामी है। चित्त के ऊपर जितनी अधिक लहरें हैं, मन उतना ही अधिक मजबूत है। इसके उतने ही अधिक आयाम हैं, दौड़ने के अवसर हैं।

जब हम इन छोटी-छोटी बातों से ही नहीं उभर पाते हैं तो आत्मा का संसार तो और भी अधिक विशाल है। वह तो निर्लेप और निराकार रूप है। कोई भी किसी प्रकार का लेप या आकार उसके पाक और पवित्र रूप को अशुद्ध करता है। और शब्द के मण्डल तो इतने गहरे व अंधकारमय हैं कि बहुत ही शुद्ध विचार लेकर सतगुरू प्रेम और स्मरण की दोधारी तलवार लेकर ही उनसे पार निकला जा सकता है। ये शब्द के मण्डल काल की खाई हैं जो योगविद्या में लीन बड़े-बड़े शूरवीरों को निगल जाते हैं और पता भी नहीं चलता। धुन के मण्डल में व्यक्ति ठहर नहीं सकता है और शब्द के मण्डल काल का गाल हैं, क्या उपाय है सुरत के पास? शब्द के मण्डल में जाकर तो गिरना ही पड़ता है तब तक जब तक सुरत अपने आखरी मुकाम पर नहीं पहुंच जाती। सुरत (धुन) से शब्द और शब्द से सुरत का

मण्डल पैदा होता है। धुन का मण्डल शब्द के मण्डल का बाहरी शरीर है जैसे हमारा शरीर आत्मा का बाहरी खौल है, उसकी हिफाजत का जरिया है। इसलिए धुन और शब्द के एक-एक मण्डल को मिलाकर पुरूष (शब्द) और प्रकति (धुन) का जोड़ा बनता है। दोनों के अखण्ड मेल को ही अर्धनारीश्वर कहा जाता है। इसलिए जब भी इस रूप के बाहरी शरीर अर्थात् धुन (उमा या राधा रूपी प्रकति) को पकड़ा जाता है तो इस धुन को पैदा करने वाली ताकत शब्द (शिव रूपी पुरूष) में भी अखण्ड रूप से समाना पड़ता है। नीचे के स्तर पर स्थूल रचना है जिसमें प्रकति (उमा या माया या राधा) का अंश अधिक होता है और पुरूष (स्वामी या ब्रह्म) का अंश कम होता है लेकिन ज्यों-ज्यों ऊपर की तरफ चढ़ाई होती है, ब्रह्मरूप मुख्य हो जाता है, और माया अर्थात् प्रकति पूरी तरह से पुरूष में समा कर अंत में स्वामी रूप बन जाती है। माया और ब्रह्म में, पुरूष और प्रकति में या राधा और स्वामी अर्थात् आत्मा और परमात्मा में कोई भेद बाकी नहीं रह जाता है। केवल शब्दों का भेद है, केवल भाषा का अन्तर है। किसी भी नाम से पुकारो अन्त में एक ही तत्व रह जाता है।

अतः यदि सुरत (आत्मा) धुन में जाती है तो उसे शब्द में आना पड़ता है, इसमें किसी का वश नहीं चलता है। सुरत को ही धुन या राधा भी कहा जाता है। जब यह सुरत (राधा) अपने आदि धाम अगम लोक में पहुंच जाती है तभी यह धुन मण्डल में रूक सकती है। इससे पहले किसी भी धुन के मण्डल में ठहरना इसके वश की बात नहीं है। यह केवल निजस्वरूप (आदि धुन) को प्राप्त करने पर ही धुन के मण्डल में रूक

सकती है क्योंकि इससे आगे जाने के लिए सुरत के पास रास्ता ही नहीं है, इसके बाद इसकी मुक्ति हो जाती है क्योंकि इसका पूरा अस्तित्व स्वामी (आदि-शब्द) में जाकर समा जाता है। संबंधों के संसार में रहने के लिए इसे निजस्वरूप में ठहरना पड़ता है, इससे आगे आदि शब्द में केवल समाधि अवस्था में ही जा सकती है जिसे अनामी धाम या सतगुरू दरबार कहा जाता है जहां आकर सारी इन्द्रियां जाम हो जाती हैं, विचार की गति थम जाती है, होश जवाब दे जाता है, रसना अंदर धस जाती है, आंखों की पुतलियां ऊपर चढ़ जाती हैं। वाणी की जहां गम नहीं है, यतो वाचा निवर्तन्ते। जब थोड़ा होश आता है तब भी आत्मा अपनी स्थिति को छोड़ना नहीं चाहती है लेकिन संसार में व्यवहार करने के लिए उसे नीचे लौटना ही पड़ता है, आदि धुन में आना पड़ता है।

जब सुरत अनामी धाम में जाती है तो यह आदि शब्द (स्वामी या सतगुरू) में लीन हो जाती है, लय हो जाती है। उसके बाद यह शब्द रूप भी गायब हो जाता है अर्थात् अनहद भी मर जाता है। शब्द में जाते ही प्रकाश खत्म हो जाता है और अंतिम अवस्था में जाने पर शब्द भी सतगुरू के अजब रूप में लय हो जाता है। कबीर साहब कहते हैं-

जाप मरै अजपा मरै अनहद भी मर जाए।
सुरत समानि शब्द में ताहि काल न खाय।।

प्रकाश भी चला जाता है अंधकार भी, साकार भी खत्म हो जाता है निराकार भी। सगुण भी और निर्गुण भी। न द्वैत है न अद्वैत, न हां है और न ही ना, न अस्ति और न नास्ति। आस्तिकता और नास्तिकता दोनों की मत्यु हो जाती है। यही है सतगुरू का अजब रूप।

हिन्दू कहूं तो मैं नहीं, मुसलमान भी नांहि।

पांच तत्व का पुतला, गैबी खेले माहि।।

अब इस शरीर के ऊपर कोई अपनी मोहर नहीं लगा सकता है, हमारी चेतना की चादर को कोई धर्म, कोई विचार या कोई संस्कार दूषित नहीं कर सकता है, मैली नहीं कर सकता है। कुछ समय के लिए यदि इस पर जाने अनजाने कोई मैल आ भी जाता है तो वह समाधि में जाते ही फिर उजली हो जाती है। साधक स्वयं (निजस्वरूप) के अंदर ठहर जाता है। काल के थपेड़ों से अब वह कम प्रभावित होता है, जितनी समय की जरूरत होती है उतना ही प्रभावित हो पाता है। परमात्मा की रजा में रहना उसका स्वभाव बन जाता है।

न द्वैत न अद्वैत, न साकार न निराकार, ना आस्तिक ना नास्तिक। जब मस्तिष्क में विचार की कोई गति ही नहीं है तो आप स्वयं को क्या कह सकते हैं। यदि अद्वैत का ख्याल पैदा होता है तो द्वैत भी मस्तिष्क के द्वार पर दस्तक देगा। यदि दयाल का ख्याल पैदा होगा तो काल की याद भी अवश्य आएगी। यदि प्रकाश का वरण करेंगे तो अंधकार भी वरण करना पड़ेगा। यदि सत्य में गहरी आस्था है तो असत्य का डर भी सताता रहेगा। यह सही है कि मार्ग पर मजबूती से चलने के लिए इनका चयन करना भी आवश्यक है लेकिन यह भी दरम्यानी अवस्था है, बीच की अवस्था है। इस अवस्था से ऊपर जाना होगा। यदि दयाल का ख्याल है तब भी अधूरा है, काल का ख्याल है तब भी अधूरे में है। दोनों से ही पार जाना होगा। शिवव्रतलाल जी कहते हैं कि यदि दयाल का ख्याल रहेगा तो काल

के ख्याल से भी बच नहीं पाओगे। फिर काल और शैतान तो हमारे परम मित्र हैं। ऐसी मित्रता है कि कोई निभा नहीं सकता। प्रेम को भूला जा सकता है लेकिन दुश्मन को भूलना बहुत कठिन है। जब किसी से दुश्मनी बंध जाती है तो वह हमारा प्यारा मित्र बन जाता है। हम उसके साथ हर समय जुड़े रहते हैं, पल्लू छुड़ाना चाहते हैं कि मन उसे भूलना ही नहीं चाहता। जब सोते हैं तब भी उसे अपने ख्याल की गोद में लेकर सोते हैं। उसकी याद कभी नहीं भूलती। यदि दुश्मन हमेशा सामने या संग ही रहता हो तो उसकी मित्रता का फिर कहना ही क्या। उसे देखते ही फिर याद ताजा हो जाती है। ऐसा परम मित्र है शैतान का ख्याल जो मित्र बनकर हमें हर पल ठगता है। मित्रता निभाना बड़ा मुश्किल है लेकिन दुश्मनी निभाना आसान है। यह हो सकता है कि हमारा कोई भी प्यारा मित्र न हो लेकिन ऐसे मनुष्य जरूर होते हैं जिनसे हम नफरत करते हैं। दुश्मन हमारे साथ ही हमारे दिल में घुसकर सोता है, दयाल या परमात्मा ऐसा नहीं करता। यदि दयाल के साथ ऐसी मित्रता हो जाए तो हम परमात्मा के द्वार पर हो सकते हैं।

राम का ख्याल है तो रावण का ख्याल जरूर सालता रहेगा और यदि रावण का ख्याल है तो राम का विचार भी अवश्य ही पैदा होगा। जब तक हम काल, स्थान और कारण (टाइम, स्पेश और काजेशन) में हैं, तब तक इस चीज से बाहर नहीं जा सकते हैं। इसलिए हमें ऐसी जगह पर अपनी जड़ें जमानी हैं जहां पर ये सब न हो, विचार या ख्याल का जिसमें कोई संबंध न हो। जहां विचार

उठने ही बंद हो जाएं, उनको उठाने वाली शक्ति ही जवाब दे जाए या उस ताकत को ही वापिस खींच लिया जाए जिसमें विचारों की जड़ें मौजूद हैं और इन्हें पोषण देती हैं। जब सुरत अनामी धाम में चली जाती है तो विचारों की चाल थम जाती है। लेकिन सुरत जब अनामी धाम से नीचे उतर कर आ जाती है, निजस्वरूप या निजधाम से नीचे आती है तब धुन और प्रकाश में आकर ठहरती है। विचार भी उठने लगते हैं और विचार पैदा होने के साथ ही संसार का संबंध और संसार पैदा हो जाता है।

मार्ग में प्रकाश और अंधकार दोनों आते हैं। यदि नाद के साथ प्रकाश नहीं है तो वह नाद काल की रात्रि है, यहां पर अंधकार और मौत की काली ताकतें निवास करती हैं इसलिए योगी को तब तक आगे बढ़ते रहने की कोशिश करते रहना चाहिए जब तक वह धुन में नहीं पहुंचता और अखण्ड प्रकाश में नहीं ठहरता। बीच के लय मण्डलों में नहीं ठहरना चाहिए। ये लय मण्डल बीच की दिवारें है जो आगे बढ़ने से रोकती हैं और ये दिवारें ऊर्जा के हर स्तर पर मौजूद हैं। पथ्वी के वायुमण्डल में भी कई तह हैं या स्फीयर हैं जैसे ट्रोपोस्फीयर, स्ट्रैटोस्फीयर आदि। इन दो मण्डलों के बीच में भी एक पाज होता है, शुन्य मण्डल होता है जिसे ट्रोपोपाज कहा जाता है। सूर्य मण्डल के चारों ओर जो पाज है, शुन्य मण्डल है उसे हेलियोपाज कहते हैं। पथ्वी और चंद्रमा के बीच में या पथ्वी और सूर्य के बीच में भी शुन्य मण्डल हैं जो सूर्य की सतह पर होने वाले विस्फोट के धमाकों का शोर हम तक पहुंचने से रोकते हैं। पाज कहते हैं ठहराव को जहां दोनों मण्डलों की शक्ति में

ठहराव आ जाता है, न्यूट्रल हो जाती हैं। न इधर का खिंचाव है न उध ार का। ये शुन्य मण्डल हर अस्तित्व को अपने स्थान पर ठहरे रहने में मदद करते हैं, पूरे सिस्टम को स्पोर्ट देते हैं। ये शुन्य मण्डल हर छोटे से छोटे कण से लेकर ब्रह्माण्ड के बड़े से बड़े सिस्टम में मौजूद हैं जो बाहर के अवांछित या अनचाहे दखल को रोकते हैं। अवांछित एन्ट्री को रोकते हैं। ये शुन्य मण्डल (न्यूट्रल जोन) हर अस्तित्व के मध्य में भी मौजूद हैं और हर सिस्टम के बाहर भी उसे घेरे हुए हैं ताकि कोई भी वस्तु सिस्टम के मध्य में जाकर न समा जाए या अपने केन्द्र से टूटकर अनजाने आकाश में न बिखर जाए। जैसे पथ्वी सूर्य का चक्कर लगा रही है, चन्द्रमा पथ्वी का चक्कर लगा रहा है, एक सूर्यमण्डल दूसरे सूर्यमण्डल और एक आकाशगंगा दूसरी आकाश गंगा का चक्कर लगा रही है। जितना बड़ा अस्तित्व है, उसके बीच में और उसके चारों तरफ उतना ही बड़ा शुन्य मण्डल है। अब विज्ञान की खोज भी इसे सिद्ध कर रही है कि हर आकाशगंगा के मध्य में एक विशाल ब्लैक होल है जो अपने चारों तरफ के बूढ़े सितारों को निगलता जा रहा है और बढ़ता जा रहा है। दूसरी तरफ हर आकाशगंगा बाहर के शुन्य मण्डल में भी पसरती जा रही है और परिधि पर नित गए सितारों और सूर्यमण्डलों की रचना होती जा रही है।

अस्तित्व के अन्दर ऐसे शुन्य मण्डल अनेक हैं। इसी प्रकार हमारे शरीर और मन की ऊर्जा में भी शुन्य मण्डल हैं, दिवारें हैं, जो ऊर्जा की गति को ठहराव में लाते हैं। जब हम दिन -रात भागते-भागते थक जाते हैं तो यही शुन्य मण्डल हमारी ऊर्जा को ठहराव देते हैं ताकि शरीर और मन उस आपाधापी की दौड़ में बिखर न जाएं।

थकावट या गहरी नींद की अवस्था में हमारी सारी ऊर्जा इन्हीं अन्तरतम न्यूट्रल जोन में जाकर आराम फरमाती है जहां सतह की सारी थकान मिट जाती है, सारे खिंचाव शिथिल पड़ जाते हैं लेकिन यदि व्यक्ति आलस्य में इन्हीं उदासीन मण्डलों में पड़ा रहे तो उसका जीवन निरर्थक हो जाता है। ध्यान के द्वारा हमें इन शुन्य मण्डलों की दिवारों को तोड़ना है, बींधना है ताकि अन्दर की चेतना निर्बाध रूप से सारे शरीर और मन में बह सके। इसके बहाव में रूकावट यदि आती है तो जिस भी स्थान पर रूकावट आ जाती है वहीं पर बिमारी आने का खतरा बढ़ जाता है। विज्ञान कहता है कि शरीर के हर अणु, परमाणु और कोशिका के चारों ओर एक शुन्य मण्डल होता है, एक न्यूट्रल जोन है जो सारे सिस्टम को बिखरने से रोकता है। कोलेप्स नहीं होने देता है। छोटे-छोटे शुन्य मिलकर बड़े शुन्य मण्डल बनाते हैं और बड़े शुन्य मण्डल मिलकर और बड़े व विराट शुन्य मण्डल बनाते हैं। इस शरीर में सुषुप्ति का शुन्य मण्डल दूसरे सारे शुन्यों का आधार है, ऊर्जा का स्त्रोत है। सुषुप्ति की ऊर्जा की तरंग (वेवलैंग्थ) में जाए बिना शरीर में ताजगी नहीं आती है। उसी तरंग में जाने के लिए जागत ध्यान का अभ्यास किया जाता है। ध्यान से दूसरा लाभ यह भी होता है कि मस्तिष्क का दाहिना भाग क्रियाशील हो उठता है, जो सुषुप्ति में संभव नहीं है। जब शरीर, प्राण और बुद्धि की ऊर्जा सुषुप्ति के अंधकार में डुबकी लगा लेती है तो फिर वह अपने पुराने स्वभाव में आकर अपनी रचना में व्यस्त हो जाती है। यही ब्रह्माण्ड की ऊर्जा के साथ होता है।

परमात्मा की शक्ति या एक तत्व का साक्षात्कार करने के लिए हमें बीच के इन सारे शुन्य मण्डलों को बींधने की आवश्यकता है ताकि सारी चेतना निर्बन्ध होकर शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म कोष में गति कर सके। दो शुन्य मण्डलों के बीच की जो ध्यान की अवस्था है वह रोचक है, उसमें खिंचाव है, प्रकाश और धुन है। खिंचाव और प्रकाश इसलिए है कि यहां दूई है। शक्ति की एक इच्छा है, विल है जो दो शुन्य मण्डलों को आपस में जोड़ती है। जब सारे लय मण्डल आपस में मिलकर एक हो जाते हैं तो हम अखण्ड प्रकाश में ठहर जाते हैं। प्रकाश का जीवित झरना बन जाते हैं। बुद्ध द्वारा कहे गए शब्द-'अप्प दीपो भव' हो जाते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि इस अवस्था में कैसे जाया जा सकता है? मैं कहता हूं कि प्रेम और भक्ति के सिवाय कोई दूसरा रास्ता है ही नहीं। अस्तित्व की गहराई में केवल प्रेम ही जा सकता है, वह भी विशाल हृदय प्रेम , विचारातीत, भावातीत प्रेम। प्रेम जब सरिता की तरह बहने लगता है तो सारे भय, सारे संस्कार, सारे पर्दे सहज ही नेस्तनाबूद हो जाते हैं। जब ये सारे पर्दे हटते हैं तभी जाकर विरही की आत्मा इन पर्दों के अन्दर छिपे हुए परमात्मा का दीदार कर पाती है। कबीर साहब कहते हैं-

आंधी आई प्रेम की, ढ़ई भरम की भीत।
माया टाटी उड़ि गई, लगी राम सों प्रीत।।

शरीर, इन्द्रियों और मन के सारे चोर भाग खड़े होते हैं। मालिक के प्यार की मर्ज बढ़ती चली जाती है। कोई सतगुरू रूपी

वैद्य ही इसकी मरहम कर सकता है। प्रेमी अपने प्रीतम के प्यार में सब कुछ भूल जाता है।

जहां प्रेम तहं नेम नहीं, तहां न बुद्धि व्यवहार।
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिनै तिथि वार।।

ज्ञानी का ज्ञान स्वयं ही एक पर्दा बन जाता है। जितना अधिक ज्ञान, उतना ही बड़ा पर्वत रूपी विचार आत्मा और परमात्मा के बीच में अड़ जाता है। ज्ञानी व्यक्ति असल में तो किसी को गुरू मान नहीं सकता और अगर मान लेता है तो उसका अहंकार उसे समर्पण नहीं करने देता है। इसीलिए ज्ञानी अस्तित्व के अन्तरम पर्दो को उधेड़ने में विफल रहता है। वह परमात्मा के बाहरी दर्शन को ही भरपूर समझ लेता है। लेकिन प्रेमी जब एक बार अस्तित्व की धड़कन में स्वयं को फनाह कर देता है तो उसका ज्ञान स्वतः ही खुलने लगता है, अस्तित्व उसे अपना भेद देने लग जाता है।

विचार वति को बिखराता है लेकिन प्रेम वति को एकाग्र करता है। सुरत को बांधता है। जब तक सुरत की गांठ नहीं बंधती, तब तक बीच के लयमण्डलों को पार करना संभव नहीं है। जब तक सुरत विरह की अग्नि में नहीं जलेगी तब तक ये शुन्य मण्डल पार नहीं किए जा सकते हैं। इन शुन्य मण्डलों का अपना खिंचाव होता है। जिस प्रकार ब्लैक होल अपने पास से गुजरने वाली वस्तु को अपनी तरफ खींचकर निगल जाता है उसी प्रकार शरीर व मन के शुन्य मण्डलों का अस्तित्व है जो मन-माया से लिपटी हुई भारी आत्माओं को निगल जाते हैं और आजीवन नहीं निकलने देते हैं।

योगी भी स्वयं ही बहता हुआ इन शुन्य मण्डलों में जा गिरता है और अहसास तक नहीं कर पाता क्योंकि इनका खिंचाव ही ऐसा होता है। जिस प्रकार यदि कोई व्यक्ति छत से कूदता है तो वह स्वयं ही नीचे आ जाता है क्योंकि पथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति उसे नीचे खींच लाती है और वह व्यक्ति इस रहस्य को जान भी नहीं पाता है। इसी प्रकार सष्टि भी ब्रह्माण्ड के लय मण्डलों में समाती चली जाती है और अपने समय पर लाखों-करोड़ों वर्षो में इन लय मण्डलों से उसी प्रकार ताजगी के साथ निकलकर आती है जिस प्रकार एक व्यक्ति हर रोज सुषुप्ति के लय मण्डल से निकलकर सुबह उठकर रचना करने लगता है, अपना कार्य करने लगता है। जिस प्रकार मनुष्य थकने पर सुषप्ति में चला जाता है उसी प्रकार जब ब्रह्माण्ड की शक्ति चलते-चलते थक जाती है या चूक जाती है तो इन अंधकार से पूरित लय मण्डलों में जाकर विश्राम करती है, ऋग्वेद भी इसकी सिद्धि करता हुआ कहता है कि सष्टि अंधकार से उत्पन्न होती है और अंधकार में जाकर समा जाती है। महाप्रलय के समय ये सारे लय मण्डल सबसे बड़े और मुख्य (सैन्ट्रल) लय मण्डल में विलीन होकर एक हो जाते हैं। लय मण्डल से जीवन की धारा फूटती है और अंत में लय मण्डल में विलीन होना ही मत्यु या प्रलय का कारण बनता है। किसी भी अस्तित्व के जीवनकाल में ये लय मण्डल ही हैं जो उस अस्तित्व को अपने स्थान पर टिकाए रखने में मदद करते हैं। शरीर या ब्रह्माण्ड के इन सभी लय मण्डलों से तारतम्यता स्थापित करना ही ध्यान का मकसद है।

जो शुन्य मण्डल इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं वही लय मण्डल बीज रूप में हमारे शरीर के अन्दर भी विद्यमान हैं। शास्त्र कहता है-यत् पिण्डे तत् ब्रह्मण्डे। यदि शरीर की ऊर्जा को नजदीकी से देखा जाए और गहन आत्म विश्लेषण किया जाए तो हमें विशाल ब्रह्माण्ड का कुछ भेद मिल सकता है और अनेकों अनसुलझे रहस्य बेपरदा हो सकते हैं। शरीर के लय मण्डल भी इतने ही खतरनाक हैं और इनमें गिरने के बाद सतगुरू प्रेम और नाम का स्मरण ही इनसे बाहर निकाल सकता है। परमात्मा के लिए बहुत भारी खिंचाव, विरह की तड़फ और सम्पूर्ण ताकत की एकाग्रता ही इन अंधकार की खाईयों से सुरत को बाहर निकाल सकते हैं जो केवल प्रेम और भक्ति से ही संभव है। इसके बिना इनका कोई इलाज ही नहीं है।

ध्यान का असली मकसद शरीर व मन के इन लय मण्डलों का साक्षात्कार व अनुभव करना है। इन लय मण्डलों में से सारी सष्टि निकलकर आती है। ये लय मण्डल सुषुप्ति के अंधकार से व्याप्त हैं। सुषुप्ति के अंधकार में बेसक थकी हुई ऊर्जा पुनः ताजगी प्राप्त करती है लेकिन फिर भी यह अवस्था अज्ञान और बेहोशी की अवस्था है। अतः लय मण्डलों में व्याप्त अव्यक्त का अनुभव भी अधूरा अनुभव है इसलिए सुरत का मुक्त होने के लिए इन लय मण्डलों से निकलना भी अति आवश्यक है और इन लय मण्डलों के खतरनाक अंधकार से सुरत तभी निकल सकती है जब सतगुरू प्रेम और स्मरण से सुरत का विरह अंग जागे जो अपनी विरह की अग्नि से इन अंधकार के मण्डलों में भी रोशनी भर दे तथा सुरत की इनसे बाहर निकलने में सहायता करे। जब तक शरीर, मन, प्राण, बुद्धि व आत्मा की सारी शक्ति एकाग्रता या एकता के सूत्र में नहीं बंधती तब तक इन अंधेरी खाइयों से निकल पाना सम्भव नहीं है और यह केवल प्रेम व भक्ति के द्वारा ही सम्भव है।

जब सुरत इन अंधेरी घाटियों से निकलती है और ऊपर की तरफ यात्रा करती है तो अनुभव की चोटी पर जाकर परमात्मा के नूर से इसका अंग-२ भर जाता है और यह सतपुरूष की गोद में जाकर समा जाती है। अब इसके अन्दर के सारे लय मण्डल भी प्रकाश व दिव्यता से भर जाते हैं। सारा शरीर, इन्द्रियां, मन व बुद्धि इस अलौकिक अनुभव की दिव्यता से खिल उठते हैं। सुरत हमेशा के लिए व्यावहारिक रूप से अगम लोक या निज-स्वरूप में ठहर जाती है, आदि धुन में ठहर जाती है जो अखण्ड प्रकाश का स्रोत है। समाधि की अवस्था में सुरत आदि शब्द (स्वामी) में समा जाती है लेकिन इस आदि-शब्द के अनुभव में सुरत हमेशा नहीं ठहर पाती है क्योंकि यहां पर आकर जीवन की सारी गति थम जाती है, नाड़ी मंद हो जाती है, आंखों की पुतलियां ऊपर चढ़ जाती हैं। यही है जीते-जी-मरने का अभ्यास। ऐसा मरना जब होता है तो वह अपने साथ सारी नियामतें लेकर वापिस आता है। चेतना का सारा मैल यहां पर डूबकी लगाने से धुल जाता है। इसके आनंद में सुरत मस्ती में झूम जाती है और जीवन के ऐसे स्रोत के साथ जुड़ जाती है जो कभी नहीं चूकता, जिसकी कभी मत्यु नहीं होती। ब्रह्माण्ड के लय मण्डलों से निकलने वाले जीवन की मत्यु हो सकती है, वह लय-प्रलय के भंवर में आता और जाता रहता है लेकिन सच्चखण्ड की दिव्यता और आदि नाद का पान करने वाली सुरत सारी सष्टि के कर्त्ता पुरुष के अंदर समा का उसी का रूप बन जाती है जहां से सारे कर्मों के स्रोत फूटते हैं, सारा ज्ञान दिव्य धारा बन कर बहता है तथा प्रेम व भक्ति अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त कर जाते हैं।

राधास्वामी।

जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न

V क्या धर्म रोजी-रोटी दे सकता है?
V क्या अध्यात्म से दु:खों का छुटकारा हो सकता है?
V क्या अध्यात्म धन और आश्रमों का मोहताज हो गया है?
V क्या सत्संग केवल धन कमाने का साधन बन गया है?
V क्या धर्म देश और समाज को सुरक्षा दे सकता है?
V क्या धर्म बिखरे व्यक्तित्व और समाज को जोड़ सकता है?
V क्या परमात्मा अमीर लोगों की धरोहर बन गया है?
V अध्यात्म क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है?
V क्या अध्यात्म, विज्ञान और संसार एक दूसरे के विरोधी हैं?
V क्या शरीर, मन व आत्मा अलग-अलग हैं?
V कुण्डलीनी जागरण क्या है?
V अनहद शब्द व धुन में क्या अन्तर है?
V परम्परावादी और आत्मनिष्ठ धर्म में क्या अन्तर है?
V कर्मकाण्ड बन्धन व दु:ख का कारण क्यों बन जाता है?
V सभी धर्मों की उत्पत्ति मानसिक संसार से है, कैसे?
V अच्छी संगत से बुरे कर्म कैसे कट जाते हैं?
V सतगुरू सूली का दर्द सूल में कैसे बदल देता है?
V सिद्ध पुरूष की इच्छा शक्ति मजबूत क्यों हो जाती है?
V सृष्टि की प्रलय व शरीर की मृत्यु का क्या सम्बन्ध है?
V अभ्यास की अट्ठारह मंजिलें कौन सी हैं?
V क्या भाग्य को बदला जा सकता है?
V क्या मन व अंहकार वास्तव में बुरे हैं?
V अध्यात्म के लिए विशाल दृष्टि जरूरी क्यों?
V सुरत-शब्द योग का मार्मिक रहस्य क्या है?
V व्यक्तिगत अस्तित्व व ब्रह्माण्ड में कितनी समानता है?
V ध्यान से समस्याओं का समाधान कैसे मिलता है?
V ध्यान से संसार का विनाश भी हो सकता है, कैसे?
V प्रेतात्मा व देवात्मा के प्रकट होने का कारण व अर्थ
V उत्पत्ति व प्रलय का वैज्ञानिक व अध्यात्मिक आधार क्या है?
V नाम व ध्यान का विज्ञान क्या है?
V कामधेनू गाय व कल्ववृक्ष की प्राप्ति क्या है?
V असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति कैसे हो?

........इत्यादि प्रश्नों के उत्तर जानिऐ?

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र

पुस्तक सूची

1. सतगुरू ताराचन्द जी महाराज के 101 अनमोल रत्न
2. रूहानी पत्र व सतगुरू आदेश
3. आत्मिक सफर और रूहानी मंजिलें (प्रश्नोतरी)
4. संत अवतरण
5. सम्यक समाधि : आत्मिक सफर की कहानी
6. पुरूष-प्रकृति
7. ईसा-मसीह कौन हैं?
8. युद्ध और जीवन दर्शन
9. अवतार अवतरण रहस्य
10. अध्यात्म से इच्छा शक्ति मजबूत कैसे होती है?
11. प्रेम और भक्ति का शिखर
12. सत्य और धर्म का अनुभव क्या इसी जन्म में संभव है?
13. टूटते रिश्ते बढ़ता अंधविश्वास व अध्यात्म
14. बच्चों पर सत्संग का प्रभाव
15. विश्व की समस्याएं और आध्यात्मिक समाधान
16. पृथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य
17. क्या धर्म, विज्ञान और संसार अलग-अलग हैं?
18. मनुष्य के लिए अध्यात्म जरूरी क्यों ?
19. आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य